International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 4, April- 2022
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 8.018 |

उपन्यासकारों के साहित्य में सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना

कृष्णामूर्ति एस. के. ज्योथि [1], डॉ. राजेश कुमार [2]
हिंदी विभाग
[1,2] सनराइज यूनिवर्सिटी, अलवर, राजस्थान

शोध सार

किसी भी रचना या कृति का लेखन मनोरंजन के साथ–साथ किसी विशेष उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया जाता है। निरुद्देश्य साहित्य अर्थहीन और बेकार है। संपूर्ण जीव–जगत में मनुष्य ही ऐसा प्राणी होता है, जो अन्य की चेतना को महसूस कर सकता, मनुष्य की यही विशेषता ही उसे अन्य जीवों से अलग करती है। 'चेतना' सामाजिक या आर्थिक किसी भी रूप में ही क्यों न हो, साहित्य को जीवंत बनाती है। समाज में चेतना लाना अर्थात समाज को जागरूक करने में साहित्य की महती भूमिका होती है। समाज की दशा–दिशा साहित्य द्वारा ही तय की जाती है। समाज में व्याप्त विसंगतियो एवं कुरीतियों का उन्मूलन साहित्य के द्वारा ही किया जाता है।

कुंजी शब्द : चेतना, सामाजिक चेतना, राजनीतिक चेतना, साहित्य, साहित्य में चेतना, साहित्य का उद्देश्य, जागृति और प्रेम के साहित्य में सामाजिक चेतना।

भूमिका

साहित्य में चेतना के महत्व को समझने से पहले हमें सर्वप्रथम चेतना के अर्थ को समझना होगा।
चेतना शब्द की उत्पत्ति 'चित्' धातु में 'ल्युट्' के आगम तथा 'इ' के गुण होने पर स्त्रीलिंगार्थक 'आ' लगाने से मानी जाती है। 'चित्' + 'ल्युट्' (अन) + 'टाप' (आँ) = 'चेतना'। चित् धात् का अर्थ है – प्रत्यक्ष ज्ञान करना, समझना, जानना। इससे चेतना का अर्थ हुआ – 'परिवेशगत तथा स्वयंगत तत्वों का ज्ञान।

अंग्रेजी में 'Consciousness' और 'Awareness' शब्द चेतना के पर्यायवाची माने जाते हैं। 'Consiousness' शब्द की व्युत्पति कोन्शसियस (Consious) और कोन्सिरे (Conscire) शब्द से हुई है। इनका अर्थ हैं – जानना (To know), वस्तुओं को एक साथ देखना (See consiece), 'Consiousness' का अर्थ है – 'जागृत, स्मृति, बुद्धि, होश में, आना।'

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 4, April- 2022
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 8.018 |

बृहत हिन्दी कोश में चेतना का कोशगत अर्थ इस प्रकार दिया गया है – 'चेतना –चैतन्य, ज्ञान, होश, याद, बुद्धि, चेत, जीवनशक्ति, जीवन, होश में आना, बुद्धि, विवेक से काम लेना सावधान होना, सोचना, विचारना।' चेतना सृष्टि में पूर्णरूपेण सामाहित है। मानवीय चेतना अन्य प्राणिगत चेतना से भिन्न है। पशु मात्र इंद्रिय चेतना तक ही सीमित होता है, किंतु मानवीय चेतना, संकल्प, और संक्रिया से प्रेरित होती है। मनुष्य सोच सकता है, स्मरण कर सकता है, ज्ञान का उपयोग कर सकता है, उसमें विवेक शक्ति होती है, इसके विपरीत अन्य देहधारियों में इसका नितांत अभाव होता है। चेतना का संबंध अनुभूति के स्तर पर मस्तिष्क से है। सदैव परिवर्तनशीलता, गतिमयता उसका गुण है । कभी – कभी मनुष्य अपनी कृति को यथावसर चेतना का विषय बना होता है ।

मनुष्य को सुख–दुःख, इच्छा, राग, द्वेष आदि से संबंधित अनुभूति चेतना के प्रवाह के माध्यम से होती है। चेतना के बारे में हम केवल यह अनुभूत करते हैं, बिना किसी हिचकिचाहट के दूसरों को बता नहीं सकते। चेतना के कारण ही मनुष्य ही मनुष्य किसी क्रिया विशेष को तथा विचारों को व्यक्त करता है और उसी से मनुष्य की पहचान होती है। किसी वस्तु या घटना को स्वीकार करना या नकारना चेतना पर निर्भर करता है। व्यक्ति का मन ही चेतना का उद्‌गम स्थल है।

चेतना ही मनुष्य को जीवित रखती है, इस दृष्टि से चेतना जीवनदायनी शक्ति है। चेतना व्यक्ति को उसके आस–पास के वातावरण का भास कराती है। मनुष्य किसी भी शारीरिक क्रिया को तब तक नहीं कर सकता, जब तक उसको यह भास न हो जाए कि वह उसे कर सकता है। मनुष्य चेतना से उत्पन्न प्रेरणा के कारण कोई काम कर सकता है, अन्यथा नहीं।

'चेतना' का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। चेतना के बिना मनुष्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती। समय के साथ–साथ चेतना निरंतर विकसित होती रहती है। समय के साथ चेतना निरंतर विकसित होती रहती है, नई अनुभूतियों के संपर्क में आने के साथ–साथ चेतना निरंतर विस्तारित होती रहती है। वह व्यक्तिगत न होकर समष्टिगत बन जाती है। चेतना समाज के विभिन्न पहलुओं के साथ जुड़कर, विभिन्न रूप धारण करके अपना कार्य करती है।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 4, April- 2022
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 8.018 |

सामाजिक चेतना

किसी भी व्यक्ति और अभिव्यक्ति में चेतना का प्रभाव दिखाई देता है। चेतना के द्वारा ही कोई व्यक्ति अच्छे–बुरे के बीच अंतर कर सकता है और इसी के कारण वह अन्याय का विरोध करने में सक्षम हुआ है। उपयुक्त विश्लेषण से यह तो स्पष्ट है कि चेतना मन की सहज प्रक्रिया है। चेतना के विविध रूप है जैसे, सामाजिक चेतना, राजनीतिक चतना, दलित चेतना और नारी चेतना इत्यादि। सभी प्रकार की चेतना किसी न किसी रूप में सामाजिक चेतना से ही जुड़ी होती है, इसलिए सबसे पहले हम सामाजिक चेतना को समझने का प्रयास करें।

सामाजिक चेतना दो शब्दों 'सामाजिक' और चेतना से मिलकर बनी है। सामाजिक चेतना शब्द का विश्लेषण निम्न अनुच्छेद में किया जा रहा है।

अंग्रेजी में समाज के लिए 'Society' शब्द प्रचलित है, जिसका अर्थ होता है –सभा, संघ, संगत, संस्था और समाज आदि। मनुष्य का मनुष्य के प्रति संबंधों की संज्ञा का नाम समाज है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, बिना समाज के मनुष्य की कल्पना नहीं की जा सकती है, वह अपने विभिन्न क्रियाकलापों के लिए समाज पर निर्भर करता है। इस आधार पर समाज की परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं – 'एक ही स्थान पर रहनेवाले कुछ लोग जो समाज अथवा समूह की भलाई के लिए संघ बना लेते हैं, उसे समाज कहते हैं।'

हिंदी 'शब्द सागर' में समाज का अर्थ यूं दिया गया है–'एक ही स्थान पर रहने वाले अथवा एक ही प्रकार का व्यवसाय आदि करने वाले लोग जो मिलकर अपना एक अलग समूह बनाते हैं। जैसे शिक्षित समाज ब्राह्मण समाज अथवा वह संस्था जो बहुत से लोगों को एक साथ मिलकर किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्थापित की गयी हो।

'ए डिक्शनरी ऑफ दॉ सोशल साइंस के अनुसार एक ही संस्कृति का दल जो सभी प्रकार की मानवीय आवश्यकताओं एवं हितों की पूर्ति के लिए संगठित हुआ है, जिसमें सबसे अधिक प्रभावी ढंग से जुड़े हुए लोग, जो सामाजिक संरचना का निर्माण करते हैं, को सोसायटी कहा जाता है।

हिंदी और अंग्रेजी के शब्दों कोशों के अलावा कुछ भारतीय विद्वानों ने समाज की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है। जैसे श्री शंभुरत्न त्रिपाठी ने समाज को ऐसे परिभाषित किया है– 'समाज का सामान्य अर्थ व्यक्तियों का समूह है। मनुष्य मनुष्यों से पृथक रहकर अपने अस्तित्व की रक्षा करने में असमर्थ होता है। अपने अस्तित्व की रक्षा करने हेतु उसे अपने आसपास के व्यक्तियों से संबंध स्थापित करना आवश्यक है। व्यक्तियों के इन सामाजिक संबंधों को समाज कहते हैं।'

प्रसिद्ध साहित्यकार विष्णु प्रभाकर जी कहते है 'भीड और समाज एक स्तर पर समानार्थी हैं कि वे एक

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 4, April- 2022
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 8.018 |

से अधिक संख्या को सूचित करते हैं । पर दुसरे स्तर पर परस्पर विरोधी भी हैं कि अनियंत्रित है, मात्र ऊर्जा है। समाज नियंत्रित है । बाहर से नियंत्रित है परस्पर के संबंधों को लेकर है। भीतर से अनुशासित है ऊर्जा के विनाशकारी रूप के रूपान्तरित होने के कारण ।
समाज के बारे में अज्ञेय जी का मत भी उल्लेखनीय लगता है । 'समाज से अभिप्राय है, वह परिवृति जिसके साथ व्यक्ति किसी प्रकार अपनापन महसूस करे।

व्यक्ति के आपसी सम्पर्क होने तथा आपसी संबंध विकसित होने पर ही समाज का निर्माण होता है, 'समाज सामाजिक संबंधों का पार्श्व है। मनुष्य की पारस्परिक क्रियाएँ अन्तः क्रियाएँ एवं प्रतिक्रियाएँ ही समाज का निर्माण एवं विकास करती हैं । इनके माध्यम से ही समाज की एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को उसके कल्याण के लिए अपने अनुभव हस्तांतरित करती हैं। भारतीय विद्वानों के अतिरिक्त कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने भी अपने–अपने ढंग से समाज को परिभाषित करने का प्रयास किया है। राईट का मानना है कि– 'मनुष्यों के समूह को समाज नहीं कहा जाता अपितु समूह के अंतर्गत व्यक्तियों के संबंधो का व्यवस्था का नाम समाज है।' इसी प्रकार गिंसर्ब के अनुसार–'समाज व्यक्तियों का समूह है, जो उन्हें उन दूसरे लोंगो से अलग करते हैं, जो इन संबंधों में सम्मिलित नहीं होते या जो उनसे संबंधो में सम्मिलित नहीं होते या जो उनसे व्यवहार में भिन्न है।

मुक्तिबोध ने समाज पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि 'समाज रेत का ढेर नहीं जिसमें प्रत्येक कब एक – दूसरे से घनिष्ठ संबंध रखते हुए भी एक – दूसरे से विलग और स्वतंत्र रहता है । समाज एक वृक्ष की भाँति है, जिसका प्रत्येक भाग, प्रत्येक अंश प्रत्येक कण और प्रत्येक बिन्दू एक–दूसरे से और अपने पूर्ण अखंड से आवयविक संबंध रखता समाज की परिकल्पना के साथ समाज में व्यवस्था का प्रश्न आया । व्यवस्था में सामाजिक चेतना उत्पन्न हुई और मानव स्वयं को उसके भीतर तथा बाहर सीमाओं को बांधकर विचरण करने लगा। समाज में विचरण करते मानव को अपनी आवश्यकताओं की अनुभूति हुई। यह आवश्यकताएं वह हैं जो कि भौतिक सावयवी जरूरतों से संबंधित है। समाज में रहते हुए मानव ने आपने कार्य – व्यवहार, सीमाओं जातियों के विभाजन को एक आकार दिया तथा उसके मानदंड निर्धारित किये। इनमें जनरीतियाँ, रूढियाँ, कानून, संस्थाएँ, धर्म, नैतिकता, शिष्टाचार और फैशन स अपने अनुसार समाज को बनाया ।

जनमानस में अपने निर्दिष्ट उददेश्य के प्रति जागरुकता अवश्य रहती है। इस प्रकार की ज्ञानात्मक मनोवृति का नाम ही सामाजिक चेतना है। सामाजिक चेतना की उत्पति के मूल में शोषण, संघर्ष,

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 4, April- 2022
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 8.018 |

आर्थिक विषमताएँ, ऊँच – नीच की भावना, छुआ–छूत, वैवाहिक समस्याएँ, आदि सामाजिक विषमताएँ समाहित रहती है। 'वसुधैव कुटुंबकम' अर्थात सारी धरती ही एक परिवार है, सभी का एकदूसरे के साथ अन्योन्याश्रित संबंध होता है। यहाँ एक–दूसरे की सहायता करते हुए जीवन बिताना पड़ता है। परंतु इसका प्रयोग वर्तमान में संकुचित अर्थ म हो रहा है, जैसे – हिन्दू समाज, फारसी समाज, सिक्ख समाज, अंग्रेजी समाज, जैन समाज, बौद्ध समाज आदि।

व्यक्तियों का पारस्परिक संबंध समाज में एकता और शांति को स्थापित करता है। व्यक्ति और समाज का अन्योन्याश्रित संबंध है। व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग है और समाज में घटित होनी वाली राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियों का प्रभाव उसके विचारों पर पड़ना लाजमी है। किसी आम आदमी की तरह साहित्यकार भी समाज का अंग होता है, उसके विचारों पर समाज की घटनाओं का प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक काल में समाज अनेक विषमताओं स घिरा रहता है। इसलिए किसी भी काल के समाज की स्थिति का आंकलन उस काल साहित्य के अध्ययन के बाद ही किया जा सकता है।

एक ही समाज में अगर सभी को रहना है तो विकास की दिशा में अग्रसर होना जरूरी है। तभी सामाजिक चेतना की उपलब्धि संभव होगी। अतः सामाजिक चेतना, समाज के प्रति मानव चेतना की जागृति का आह्वान भी है। ऐसे सामाजिक चेतना से अभिभूत होकर लेखक के रचनात्मक व्यक्तित्व में तदनुरूप परिवर्तन आने लगता है।

सामाजिक चेतना में व्यक्ति के अपेक्षा समाज को एक इकाई के रूप में देखने का भाव निहित है। डॉ. देवेश ठाकुर की दृष्टि में –"सामाजिक चेतना के माध्यम से समाज प्रतिकूल परिस्थितियों के समाहार का ही प्रयत्न नहीं होता, बल्कि वह ज्ञान से पोषित किसी नयी विचारधारा में सहयोग देती है तो यह नयी प्रगति ही सामाजिक चेतना कहलाती है।

प्रत्येक व्यक्ति के स्वभाव में भिन्नता पायी जाती है, जिसके कारण समाज में भी भिन्नता पायी जाती है । समाज में व्यक्तियों के विविध कर्म और स्वार्थी के साथ उसके परस्पर समान तथा विरोधी हित भी व्यवहरित होते रहते हैं। जब तक इनमें सन्तुलन की स्थिति बनी रही है तब तक समाज प्रगति की दिशा में प्रशस्त रहता है लेकिन व्यक्तियों क परस्पर हितों में अधिक असन्तुलन और असंगति आने पर समाज में संघर्ष, शोषण, पीडा, पक्षधरता और संकिर्ण वर्गीयता का भाव व्याप्त हो जाता है और परिणाम स्वरूप पूरे समाज में अव्यवस्था फैल जाती है। ऐसी स्थिति में सामाजिक चेतना के माध्यम से ही सामाजिक दोषा को दूर किया जा सकता है।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 4, April- 2022
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 8.018 |

सामाजिक चेतना में किसी भी प्रकार की नकारात्मकता नहीं होती है, यह रूढि, निष्प्राण परंपरा, अशिक्षा, अभाव, अन्याय, शोषण आदि के दुष्पप्रभावों को समाज से दूर करती है तथा इससे समाज निर्माण का मार्ग प्रशस्त होता है। हिंदू समाज में अनेक विदेशी आक्रमण को झेलते हुए भी अपने अस्तित्व को बना रखने में सफल रहा परन्तु अपनी कुरूपताओं और विकृतियों को त्याग न सका । रुढि, परंपरा रीति–रिवाज तथा धर्म के नाम पर अनेक बुराईयों समाज में घर कर गई थी। शताब्दियों से समाज में नारी उपेक्षित रही। वह पुरुष के लिए मात्र उपभोग्य सामग्री रही। वर्ण व्यवस्था के अनुसार समाज का एक वर्ग अछूत समझा जाता था। खान–पान, विवाह आदि के नियम कठोर थे। अन्धविश्वासी, स्वार्थी, अशिक्षित पण्डा–पुरोहित वर्ग सामाजिक परिवर्तन का विरोध करता रहा। मानव इन क्रूर रीति–रीवाजों का त्याग कर स्वतंत्र जीवन जीने में सर्वथा असमर्थ होता गया। इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारतीय जन–जीवन सामाजिक रूढ़ियों, परंपराओं, रीतिरिवाजों तथा धर्म के नाम पर समाज में अनेक कुरूतियों को बढावा देता रहा।

साहित्य की सामाजिक चेतना

किसी भी समाज म जब परिवर्तकारी शक्तियों द्वारा संघर्ष के मार्ग को चुना जाता है, जो साहित्य वैयक्तिक चेतना को सामाजिक चेतना में परिवर्तित करता है। उदाहरण के लिए जब भारतीय समाज जब अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध संघर्षरत था, उस समय साहित्य ही उसका ध्वजवाहक बना था। हिंदी साहित्य में सामाजिक चेतना का उदय और यथार्थवादी साहित्य चिंतन का उदय भारतेन्दु हरिश्चंद्र से मानते है । वास्तव में देखा जाए तो भारतेन्दु एवं उनके समकालीन लेखन में समाज की यथार्थ स्थिति को प्रस्तुत किया गया। समाज और साहित्य के बीच चोली–दामन का साथ है । साहित्यकार समाज से प्रभावित होता है, वह समाज को जांचता परखता है, समाज में जीता, समाज का भोक्ता होता है, समाज के संबंधों का गहन अध्ययन चिंतन करता है । इस प्रकार साहित्यकार सामाजिक प्रश्नों से जूझता हुआ तथा अनुभवों के माध्यमसे रिश्ता जोडता हुआ, एक जीवन पहचान समाज के माध्यम से प्रस्तुत करता है, इसलिए साहित्य को सामाजिक साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। समाज का वैचारिक, भावनिक, मानसिक संघर्ष साहित्य में व्यक्त होता है। साहित्यकार सामाजिक अनुभव बोध और चेतना के आधारपर जीवन मूल्यों का विवेचन करता है।

वास्तव में, साहित्य का उद्देश्य सामाजिक अभिव्यक्ति मात्र नहीं, बल्कि साहित्य समाज की प्रेरणा शक्ति होता है। साहित्य समाज की भावनाओं, संवेगों, आशाओं, आकांक्षाओं और स्वप्नों का व्यापक रूप में प्रतिनिधित्व करता है। समकालीन समाज की व्याख्या करके उस समाज की विसंगतियों और अंतरविसंगतियों को अपने पूरे परिवेश में उजागर कर सकना ही साहित्य में निहित सामाजिक चेतना है ।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 4, April- 2022
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 8.018 |

साहित्यकार में सामाजिक परिवर्तन की लाने की क्षमता होनी चाहिए। सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति साहित्य के माध्यम से संभव होती है। जैसे–जैसे मानव सभ्यता का विकास हुआ, वैसे–वैसे ही कलाओं एवं साहित्य सृजन का विकास भी होता चला गया। साहित्य का विकास मनुष्य के विकास के साथ–साथ ही हुआ है। साहित्य समाज को सामाजिक बोध ग्रहण करता है और जब यह बोध विशिष्ट विचार–धारा, विशिष्ट चिंतन, विशिष्ट दृष्टिकोण, विशिष्ट सौंदर्य बोध आदि के रूप में अभिव्यक्त होता है तो इसे साहित्यकार की 'सामाजिक चेतना' कहा जाता है ।

आज की भागती–दौड़ती जिंदगी में इंसान किसी चीज से सबसे ज़्यादा दूर हो रहा है तो वह साहित्य ही है। इसके दुष्परिणाम भी साफतौर पर देखे जा सकते हैं। लोगो की अच्छा कहने–सुनने की एक दूसरे को समझने की रोचक बातचीत की क्षमता कम हो रही है। कारण साफ है कि दिमाग और मन दोनों की ही खुराक पढ़ना और साहित्य होता ही है। टी वी इंटरनेट जैसे दूसरे माध्यम जीवन में साहित्य का स्थान बिलकुल नहीं ले सकते हे प्रेमचंद बड़े ही सुन्दर शब्दों में बताते ह कि जीवन में साहित्य का क्या महत्व है?

"साहित्य का आधार जीवन है। इसी नींव पर साहित्य की दीवार कड़ी होती है। उसकी अटारियाँ, मीनार और गुम्बंद बनते हैं लेकिन बुनियाद मिटटी के नीचे दबी पड़ी है। उसे देखने का भी जी नहीं चाहेगा जीवन परमात्मा की सृष्टि है इसलिए अनंत है, अगम्य है। उसी प्रकार, साहित्य मनुष्य की सृष्टि है इसलिए सुबोध है सुगम और मर्यादा से परिमित है। जीवन परमात्मा को अपने कामों का जवाबदेह है या नहीं, हमें मालूम नहीं लेकिन साहित्य तो मनुष्य के सामने जवाबदेह है। इसके लिए कानून है, जिससे वह इधर–उधर नहीं हो सकता है।"

सामाजिक चेतना समाजगत होने के साथ – साथ उसके विभन्न अंग राजनीति, धर्म, अर्थ, संस्कृति से परस्पर संबंध है । स्वतंत्रता संग्राम के समय देश में चेतना की चिनगारी फुककर क्रांति की अग्नि प्रज्वलित करने का कार्य तत्कालीन साहित्य एवं साहित्यकारों ने ही किया था ।

□ राजनीतिक चेतना

राजनीति शब्द 'राज' तथा 'नीति' शब्दों के योग से बना हुआ है। राज का अर्थ 'प्रांत' या 'राज्य' (State) होता है। नीति का अर्थ 'तत्व' या 'सिद्धांत' (Policy) से है। इन दो शब्दों के मेल से ही राजनीति शब्द बना है, जिसका अर्थ है एक राज्य की प्रजा क कल्याण के लिए बनाये गये राज्य – सिद्धांत। जब सामाजिक चेतना की परिधि से कोई भी क्षेत्र वंचित नहीं रहा तो राजनीति का क्षेत्र कैसे छूट सकता है। राजनीतिक चेतना का अर्थ है – किसी एक राज्य की जनता जो वहाँ के राज्य के नियम, विधियाँ तथा प्रजा कल्याण के अंशों का ज्ञान रखती है तो उसे राजनैतिक चेतना कहते हैं।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 4, April- 2022
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 8.018 |

राष्ट्र की प्रगति, उस देश के राजनैतिक प्रगति से जुड़ी रहती है। किसी भी देश या राज्य के मंत्री का प्राथमिक उद्देश्य अपने देश की प्रजा के कल्याण से संबंधित होती है। इसीलिए राजनीतिक मतवादों, राज्य तथा व्यक्तियों के संबंधों, राजनैतिक संगठनों के क्रिया कलापों का अध्ययन राजनैतिक चेतना के अंतर्गत किया जाता है। राजनैतिक चेतना संपूर्ण सामाजिक बोध को नए परिप्रेक्ष्य में ग्रहण करने की दृ ष्टि पैदा करती हैं। राजनैतिक चेतना मनुष्य को अपने स्वत्व और गौरव को सुरक्षित रखने की शक्ति प्रदान करती है।

अगर भारत की स्वतंत्रता आंदोलन की बात करें तो पता चलता है कि स्वतंत्रता आंदोलन में स्त्रियों का योगदान सराहनीय एवं अविस्मरणीय रहा है। जो स्त्री घर की चार दिवारों में ही रहकर अपना जीवनयापन करती थी। उसने राष्ट्रीय आंदोलन में अपना यथासंभव योगदान दिया। उसन राजनीतिक और सामाजिक रूप से जागरुक होकर बुराईयों का विरोध किया। ऐसे में साहित्य की विषय–वस्तु इस घटना से अछूती नहीं रही। महिलाओं में राजनैतिक चेतना के प्रसार में साहित्यकर का योगदान अविस्मरणीय रहा। इस संबंध में गुणमाला नवलखा लिखते हैं–'साहित्यकार परिवेश की असंगतियों में निहित राजनीतिक उत्पीड़न के सूक्ष्म अप्रत्यक्ष तंतुओं को अनावृत करते हुए जन मानस की मानसिकता को सही दिशा की ओर प्रेरित करता है। इसके साथ साहित्य का भी दायित्व है कि वह राजनीति का गुलाम बन न रहे और साहित्यकारों को राजनीतिक लोभ व दबाव के बिना अपना साहित्यिक कार्य करते रहना चाहिए। स्वतंत्रता संग्राम में राजनेताओं और साहित्यकारों ने कंधे से कंधा मिलाकर भाग लिया। 'न खीचों कमानों को न तीर निकालो, जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो।' जैसे उदघोष अंग्रेजों के विरुद्ध दिए गए। साहित्य समाज से जुड़ा होता है और राजनीति समाज का अंग है, इस दृष्टि से साहित्य का राजनीतिक जुड़ना लाजमी है। इसके साथ ही साहित्यकार और राजनीति के गठजोड़ के लिए कुछ मानदंड पर निर्धारित किए गए है जिसका पालन प्रत्येक साहित्यकार को करना चाहिए। ऐसे अनेकानेक उदाहरण है जब अधिनायकवादी राजसत्ता के विरोध में केवल साहित्यकारों ने न अपनी कलम चलाई अपितु आवश्यकता पड़ने पर यातनाए भी सही। गणेश शंकर विद्यार्थी का प्रताप पत्रिका द्वारा आजादी का अलख जगाना, प्रेमचन्द के कहानी संग्रह सोजे वतन पर प्रतिबन्ध लगाना इत्यादि दर्शाता है कि साहित्यकार राजनीति के प्रति कितने संजीदा थे। रामनरेश त्रिपाठी से लेकर माखनलाल चतुर्वेदी तक कई कवियों ने जेल यात्राएं भी की। इंदिरा गाँधी के आपातकाल के खिलाफ नागार्जुन जैसे कवियों ने खूब जमकर लिखा और जेल की हवा भी खाई। राजसत्ता के विरोध का ज्लवंत उदाहरण है, 'जनलोकपाल आंदोलन' जिसमें कुमार विश्वास जैसे कवियों ने भी भाग लिया और सत्ता की अकर्मण्यता के विरुद्ध आवाज उठायी।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 4, April- 2022
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 8.018 |

चेतना व संवेदना के साहित्यकार प्रेमचंद

कलम के सिपाही व हिन्दी–उर्दू उपन्यास के कुशल शिल्पी मुंशी प्रेमचंद जी ने मानवीय संवेदना को अपनी कहानियों के माध्यम से ऐसे व्यक्त किया है जो सभी के हृदय को झकझोरने के लिए काफी है। वह ऐसे निष्ठावान साहित्यकार, जिन्हें कलम का मजदूर भी कहा गया। 'पंच परमेश्वर' से लेकर 'कफन' तक एक सरल रेखा खींची जा सकती है, कहीं कोई वक्रता नहीं आयी। जहाँ एक ओर वे कहते हैं, "अपने उत्तरदायित्व का बोध बहुधा हमारे संकुचित विचारों का सुधारक होता है", वहीं दूसरी ओर पाखंड पर करारा प्रहार करते हुए कहते हैं, "ये कैसा रिवाज है कि जिसे जीते–जी तन ढकने के लिए चिथड़े नहीं नसीब होते, उसे मरने पर नया कफन चाहिए"। प्रेमचंद का युगबोध व सार्वभौमिकतायुक्त विपुल रचना–संसार हमारी चेतना को झकझोरता है, संवेदना को झिंझोरता है।

प्रेमचंद युग का आगमन हिन्दी साहित्य में वह भी गद्य में एक नयी चेतना लेकर उभरा और वह चेतना सामाजिक चेतना थी। प्रेमचंद युग के सभी लेखकों ने समाज के अनछुए पक्ष का उद्घाटन अपने साहित्य द्वारा किया है। इस काल में उपन्यास और कहानियों की रचना तो हुई साथ ही महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे महान हस्ति ने अपने निबंधों में भी चेतना के स्वरों को गूंथा हैं; जहाँ समाज को सुधार के लिए चेतना को लोगों में पल्लवित करने का कार्य हुआ है। उस समय के लेखकों का केंद्रीय विषय देश की स्वतंत्रता प्राप्ति की प्रेरणा देना और व्यक्ति के अंतरमन की अभिव्यक्ति से संबंधित था। यह प्रेमचंद ही थे जिन्होंने हिंदी उपन्यास को तिल्सिम और ऐय्यरी के चंगुल से निकाल कर मानव संवेदनाओं की ओर उन्मुख कर एक नई पहचान दी। हिंदी साहित्य को समाज हितकारी बनाने में प्रेमचंद का अतुलनीय योगदान रहा।

मुंशी प्रेमचंद जी के उपन्यासों का मूल केंद्र बिंदु सामाजिक चेतना ही रही है। उनका साहित्य पीडित एवं शोषित मनुष्य में चेतना को जाग्रत करता नजर आता है। प्रेमचंद में ऐसी सामाजिक ऊर्जा थी कि उस उर्जा द्वारा सामाजिक चेतना के प्रति सजग दृष्टि रखने वालों की एक बृहद परंपरा का निर्माण हुआ जो मात्र प्रेमचंद के लिए संभव था। प्रेमचंद जी ने कहानी एवं उपन्यास को समाज के यथार्थ को जोड़ा। समाज में फैली आर्थिक विषमता, धर्म, राजनीति, व्यक्तिगत कलह आदि विषयों को अपने साहित्य में स्थान दिया है।

समूचित रूप से कहा जाए कि प्रेमचंद के समकालीन लेखकों की कहानी एवं उपन्यास विविध चेतनाओं से ओत–प्रोत नजर आते हैं। प्रमुख रूप से प्रेमचंद्र जी ने पराधीन भारत की सामाजिक और राजनैतिक इत्यादि स्थितियों का अपनी कहानी और उपन्यासों का केंद्रीय विषय बनाया ताकि जनता में अपने देश

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 4, April- 2022
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 8.018 |

की दयनीय दशा का बोध हो और वे अपनी स्थिति में सुधार के लिए प्रयत्नशील बने। एक प्रकार से प्रेमचंद ने समाज में व्याप्त दुःखद स्थिति से लड़ने की चेतना को प्रवाहित करने का कार्य किया। प्रेमचंद्र ही नहीं जयशंकर प्रसाद ने भी सिर्फ कहानी एवं उपन्यास में ही नहीं अपने नाटकों में भी चेतना को अभिव्यक्त किया।

निष्कष

'चेतना' साहित्य का मूलाधार है। चेतना साहित्य को उद्देश्य प्रदान करती है। साहित्य का विशाल बटवृक्ष चेतना के बीज से अंकुरित होता है। चेतना सामाजिक चेतना, राजनीतिक चेतना, आर्थिक चेतना, नारी चेतना और दलित चेतना के रूप में हो सकती है। चेतना साहित्य में प्राण प्रतिष्ठा करती है। अपने प्रारंभिक वर्षो में हिंदी कथा एवं उपन्यास साहित्य तिल्सिम और ऐय्यरी के जाल में उलझ कर रहे गया, उसे कोई दशा नहीं मिल रही है। इस समय एक ऐसे साहित्यकार की आवश्यकता थी, जो हिंदी कथा और उपन्यास साहित्य को इन विसंगतियों से निजात दिलाए। इस कमी को प्रेमचंद जैसे साहित्यकार ने पूरा किया। वह ऐसे साहित्यकार थे, जिन्होंने समाज में व्याप्त वर्गभेद, बाल–विवाह, बेमेलविवाह, महाजनी प्रथा, दहेज प्रथा तथा छुआ–छूत जैसी कुरीतियों की कराह एवं टीस को व्यक्ति स्तर पर महसूस किया और अंत अपनी तीक्ष्ण लेखनी के माध्यम से इसे समाज के समक्ष प्रस्तुत किया। हिंदी साहित्य को दिए इस अद्वितीय योगदान के लिए हिंदी साहित्य सदैव उनका ऋण रहेगा।

संदर्भ गंथ

1. हिंदी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन : डॉ. चण्डी प्रसाद जोशी, अनुसंधान प्रकाशन कानपुर
2. प्रेमचंद स्मृति : अमृत राय, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1959
3. प्रेमचंद के निबंध साहित्य में सामाजिक चेतना, अर्चना जैन
4. व्यक्ति चेतना तथा स्वतंत्रोतर हिंदी उपन्यास
5. उपन्यासकार प्रेमचंद्र की सामाजिक चेतना, डॉ सरिता राय, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1996
6. प्रेमाश्रय उपन्यास

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 4, April- 2022
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 8.018 |

7. हिंदी के श्रेष्ठ उपन्यास और उपन्यासकार, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना विश्व भारती पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण 2004

8. साहित्य का मूल्यांकन, डब्ल्यू बी, वर्स फोल्ड (अनु. रामचंद्र तिवारी), वि.वि. प्रकाशन वाराणसी, 1964

9. समकालीन साहित्य चिंतन, डॉ. महिपसिंह

10. महिला और स्वराज्य, आशा रानी व्होरा, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 1988

11. क्रांतिकारी महिलाएं, आशा रानी व्होरा, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 1986

12. प्रेमचंद्र यगीन भारतीय समाज, डॉ. मोहन कुमार